गीतांजलि को बूकर पुरस्कार ः एक नजरिया ये भी

जब मूल हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी में अनुदित किताब को पुरस्कार दिया गया तो सम्मान अंग्रेजी अनुवाद का हुआ ना कि हिंदी का।
फिर गर्व किस पर ? यह पढ़ने के बाद यदि मैं गलत हूं तो कोई बताए कि सही क्या है

गीतांजलि श्री के उपन्यास ‘रेत की समाधि’ के अंग्रेजी अनुवाद ‘टॉम्ब ऑफ सैंड’ को अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से नवाजा गया है…अनुवाद डेजी रॉकवेल ने किया है…

हास्य अभिनेता असरानी का एक संवाद एकाएक याद आ गया जब वो कहते हैं कि मेरी इतनी बदली के बाद भी हम नहीं बदले और ना बदलेंगे. यह संवाद बुकर पुरस्कार को लेकर याद आया जब देश के दिग्गज साहित्यकार और पत्रकार दलील दे रहे हैं कि आदरणीय गीतांजलि श्री की पुस्तक को बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया. हकीकत यह है कि किताब तो लेखिका की हिन्दी में लिखी गई है लेकिन सम्मान उनकी किताब के अंग्रेजी अनुवाद को दिया गया है. ऐसे में हिन्दी को किस बात का श्रेय दिया जा रहा है, मुझ जैसे अपढ़ के लिए समझना मुश्किल सा काम है. तर्क दिया जा रहा है रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचना ‘गीतांजलि’ के अंग्रेजी अनुवाद को सम्मान दिया गया अर्थात हमने मान लिया कि मूल रचना हाशिये पर है और अंग्रेजी का सम्मान हुआ. इसे सीधे सीधे कह सकते हैं कि हिन्दी के कंधे पर सवार अंग्रेजी का सम्मान.

साहित्य हो या सिनेमा आखिर हम विदेशी पुरस्कारों के लिए इतने उतावले क्यों होते हैं ? क्या कोई इस बात की जानकारी देगा कि बुकर सम्मान प्राप्त गीताजी की किताब की कितनी लाख प्रतियां प्रकाशक प्रकाशित कर रहे हैं और कितने लाख उसके खरीददार होंगे ? इसके बरक्स आपको यह बताते हुए मुझे प्रसन्नता होती है कि छत्तीसगढ़ के सुपरिचित व्यंग्यकार श्री गिरीश पंकज की गाय पर लिखी किताब का पहला संस्करण एक लाख प्रतियां थी और अब दस लाख प्रतियां मुद्रित होने की सूचना है. यह और बात है कि हिन्दी में लिखी इस किताब का अंग्रेजी में ना तो अनुवाद हुआ है और ना ही किसी बुकर-आस्कर जैसे सम्मान के लिए दावेदारी ठोंकी गई है. मुझे लगता है कि गिरीशजी को अपने ही देश में अपने लिखे को इतना दुलार मिल रहा है तो उन्हें किसी विदेशी क्या, अपने ही समाज के सम्मान की भी जरूरत नहीं है. एक लेखक की पूंजी उसके पाठक होते हैं और जब कोई पाठक लेखक की कृति खरीद कर पढ़े तो वह पूरे समाज के प्रति लेखक और जिम्मेदार हो जाता है. दस लाख प्रतियां छपे जाने की सूचना

गिरीशजी ने सोशल मीडिया पर दी थी और जब बात हुई तो उन्होंने इस पर अपनी सहमति दी.

गीताजी की कृति को सम्मानित होना हम सबके लिए गौरव की बात है और होना भी चाहिए. ऐतराज इस बात को लेकर है कि जिस हिन्दी को लेकर हम हल्ला मचा रहे हैं, वह तो कहीं है ही नहीं. उनकी लिखी किताब का हिन्दी शीर्षक का उल्लेख भी नदारद है. यह हम सबके लिए सोचनीय विषय है. ओम थानवी जी जनसत्ता जैसे अखबार के सम्पादक रहे हैं और हिन्दी के उपयोग पर सोशल मीडिया में सबक सिखाते रहे हैं, आज वे भी इसमें चूक कर गए. अनेक मित्र इस सम्मान के पक्ष में तर्क कम, कुर्तक करते अधिक दिखे. गिरीश जी की किताब की दस लाख प्रतियां छप रही है, यह कितने लोगों को ज्ञात है ? क्या यह हिन्दी का श्रेष्ठ सम्मान नहीं है ?

साहित्य क्या सिनेमा का हाल भी वही है. जब तक हमारी फिल्म को आस्कर ना मिल जाए, हम मानते ही नहीं हैं कि फिल्म प्रभावी है या उसका कोई सामाजिक मूल्य है ? यह भी सोचनीय है कि अनेक अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह की ज्यूरी में हमारे भारतीय अभिनेता होते हैं फिर भी हम ताकते रह जाते हैं. अंग्रेजों से तो हम आजाद हो गए लेकिन अंग्रेजी मानसिकता से कब आजाद होंगे, यह यक्ष प्रश्न हमें लगातार परेशान करता है. कब हमें स्वयं पर गर्व करना आएगा, यह सवाल भी अनुत्तरित है.

हिन्दी दिवस पर यही मित्र विलाप करेंगे कि हिन्दी हाशिये पर है तो हमारा व्यवहार यही रहेगा तो क्या उम्मीद करेंगे ? हम हिन्दी के साहित्यिक आयोजन करते हैं और नाम देते हैं लिट् फेस्ट. क्या यही हिन्दी का गौरव है ? मेरे एक अनुज कहते हैं हिन्दी की यही उदारता है तो अब क्या कहा जाए ? उदारता का अर्थ समृद्ध होना है ना कि स्वयं के अस्तित्व को नष्ट करना. हिन्दी की ताकत से भला कौन वाकिफ ना होगा ? अंग्रेजी की एक बड़ी पत्रिका को आज से तीन दशक से भी ज्यादा समय पहले हिन्दी में अपना प्रकाशन शुरू करना पड़ा. दुनिया का बाजार भारत की ओर ताक रहा है लेकिन उसे हिन्दी में ही आना पड़ता है.

(लेखक समसामयिक व साहित्यिक विषओं पर लिखते हैं)